गीताविज्ञान – कर्मयोग

प्रो. कैलाश चतुर्वेदी
पूर्व निदेशक
संस्कृत शिक्षा निदेशालय, जयपुर

गीताशास्त्रमिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पदमवाप्नोति भयशोकादिवर्जितः।।

आज 'गीता जयन्ती' का पावन दिवस है। आज से लगभग 5087 वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध में अपने समक्ष समरांगण में समवेत स्वजनों, सम्बन्धियों, मित्रों, अनुजों को युद्ध के लिए सन्नद्ध देखकर धनुर्धरी अर्जुन की शोक-ग्रस्त बुद्धि एवं मनोदशा एवं युद्धक्षेत्र में अचानक शस्त्र-त्याग कर, दीन-हीन दशा में पाकर, सारथी बने भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे स्व-कर्त्तव्य-बोध कराने हेतु जो पावन एवं शाश्वत उपदेश दिया, आज वही चिरन्तन-ज्ञान समग्र मानव जाति हेतु प्रेरक उद्‌बोध बन विश्व के कौने कौने में व्याप्त है।

अनन्त एवं अथाह महासागर के विशाल जल-स्रोत की भाँति प्रवाहित श्रीमद्‌भगवद्‌गीता जन-जन में कितनी व्याप्त है, कितनी गूढ एवं सारगर्भित है, इसके लिए किसी शास्त्रविधि अथवा मानवीय प्रमाण की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस श्रीकृष्ण-सन्देश के प्रथम पावन संग्रह से, जो लगभग 5 सहस्र वर्षो पूर्व हुआ था, सहस्राधिक व्याख्याएँ ऋषियों संतों एवं आदि शंकराचार्य से लेकर सामान्य श्रद्धालु जन द्वारा की गई है, जिनका एकत्र संग्रह एवं समीक्षा करना भी दुष्कर-कार्य है। हर युग हर काल में विद्वानों द्वारा इसकी टीका अथवा व्याख्या अपने-अपने दृष्टिकोण, अपनी अपनी समझ से की गई है और विश्व की अनेक भाषाओं एवं विभिन्न क्षेत्रों में हुई है, जिनका आर पार खोजना भी हिमालय की चोटी पर चढ़ने के समान कठिन है। फिर आज के पावन दिवस पर हम जैसे सामान्य-जनों के लिए 'गीता-महासागर' की गहनता और विशालता को मापने का प्रयास एक सीढ़ी लगा कर आकाश की विशालता को मापन के क्षुद्र-प्रयास-वत है। सुनिए, महान भारत के विषय में सर्वपूज्य राष्ट्रपिता 'महात्मा गाँधी' के विचार-

''गीता सम्पूर्ण वैदिक शिक्षाओं के तत्त्वों का सात है। इसका ज्ञान सारी मानवीय महत्त्वकांक्षाओं को सिद्ध करने वाला है। मुझे गीता से बड़ी सान्त्वना मिलती है। जब मैं निराश होता हूँ, तब गीता की शरण लेता हूँऔर इसमे

जरूर कोई न कोई ऐसा श्लोक मिल जाता है, जिससे मैं विपत्तियों में मुस्कुराने लगता हूँ।''

अतः राम नाम की अनन्त महिमा के सदृश गीता-शास्त्र की महिमा का गुणगान व कीर्तन पुण्रू कार्य ही माना जाएगा। इस दृष्टि से इस पावन 'गीता-दिवस' पर 'गीता-विश्वास' की विशालता, गहनता और महत्ता का यशगान हमें शरीर-मन-बुद्धि एवं आत्मा से पूर्ण एवं पवित्र मनुष्य बनाएगा, इस लक्ष्य को समझ रख कर गीता-अनन्त-सागर की कतिपय- अमृत-बिन्दुओं का रसपान करना सभीचीन होगा।

बन्धुओं। आधुनिक विद्वानों, खगोलविदों ने 'कुरूक्षेत्र' में 18 दिन तक हुए महाभारत-युद्ध की ऐतिहासिक तिथियों का भी निर्धारण कर डाला है। उनके अनुसार यह युद्ध आज के प्रचलित ईसाई कलेण्डर के अनुसार 22 नवम्बर, 3067 ई.पू. को प्रारम्भ हुआ और तद्नुसार 10 दिसम्बर, 3067 ई. पू. को समाप्त हुआ। इस दृष्टि से गीता का यह पावन-उपदेश भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा आज से 5087 वर्ष पूर्व दिया गया।

यह तो हुई काल-निर्धारण की बात। सहस्राधिक टीकाएँ एवं व्याख्याएँ इसकी विषय-वस्तु के सम्बन्ध में क्या कहती है, जरा इस पर भी ध्यान दीजिए। सामान्य कथन के रूप में और सरल शब्दों में तो इसे एक ही वाक्य में अभिव्यक्त किया जा सकता है-

''विषाद्ग्रस्त और स्वकर्त्तव्य से विमुख अर्जुन को कर्त्तव्यबोध की प्रेरणा देने का सन्देश ही गीता है।

स्व. बालगंगाधर तिलक ने गीता की सूक्ष्म एवं सारगर्भित टीका करते हुए लिखा है कि-

''अर्जुन जिस प्रकार परस्पर दो विरूद्ध धर्मों के बीज फँस गया-ऐसा ही मोह युधिष्ठिर को भी 'धूतक्रीड़ा' के समय हुआ था। समय-समय पर ऐसा ही वैचारिक-संकट विश्व मानव के समक्ष उपस्थित हुआ। प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटकरकार शेक्सपीयर के 'हेमलेट' के चाचा ने अपने बड़े भ्राता और सम्राट की हत्या कर, हेमलेट की माता को अपनी पत्नी बना लिया और राजगद्दी भी छीन ली। तब उसके मन में यह अन्तर्द्वन्द्व हुआ कि मैं पुत्र-धर्म का पालन करते हुए अपने पिता की हत्या का बदला लूं और पितृ-ऋण से मुक्त हो जाऊँ अथवा अपने सगे चाचा और अपनी माता के प्रति दयाभाव दिखाऊँ। इस मोह जाल में पड़ने पर उसकी कैसी और कितनी दयनीय दशा हुई? केवल स्वानुभव से ही पता लगाया जा सकता है। ऐसे ही अनेक उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। बड़े-बड़े पण्डितों को भी कर्त्तव्य व कर्त्तव्य के विषय में मतिभ्रम हो जाया करता है। यद्यपि स्मृति ग्रंथों में कर्म के विषय में स्पष्ट नियम बना दिए गए है कि क्या करणीय है और क्या निषिद्धकर्म है। उदाहरणार्थ मनु ने सब वर्णों के लिए नीतिधर्म के पाँच नियम

बतनाएँ हैं-'अहिंसा', सत्य, अस्तेय, काया-वीचा-मनसा शुद्धता और इन्द्रिह-निग्रह और इनमें भी अहिंसा को प्रथम स्थान दिया है।

यदि एतावन्मात्र ही गीता का सार होता, तो आज यह इतनी लोकप्रिय नहीं होती। प्रश्न उठता है कि अमरवीर इसमें ऐसे कौनसे विशिष्ट तत्त्व समाहित हैं जिनके कारण आज विश्व मानव के हृदय-पटल पर इसका एक-एक वाक्य, एक-एक श्लोक, एक-एक आशय छाया हुआ है। जहाँ तक भारतीय जनमानस का सम्बन्ध है - 'गीता' उसके मन-मस्तिष्क और हृदय में छाई हुई है। हर समस्या के समाधान हेतु उसमें हल खोजा जाता है। भारतीय संविधान में तो उसकी पवित्रता एवं विश्वसनीयता को इस उच्च आशय के साथ स्वीकार कर लिया गया है कि 'न्याय की देवी' के मन्दिर में सत्य बोलने हेतु 'गीता' की शपथ प्रमाण-भूत साक्ष्य के रूप में स्थापित हो चुकी है।

अस्तु, गीता की विषय-वस्तु के चिन्तन के लिए जब हम सहस्राधिक व्याख्याओं एवं 700 श्लोकों की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो पाते हैं कि गीता एक सामान्य उपदेश ग्रंथ नहीं है, वरन् मानव-जीवन का समग्र एवं सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण है। सृष्टि रचयिता ने आखिर क्यों और किस उद्देश्य से इस सृष्टि की रचना की। प्राणी, इस भौतिक-जगत् में क्यों और किस निमित्त आए अथवा उत्पन्न किये गये हैं, उनका प्रेय क्या है, श्रेय क्या है, उनके लिए करणीय कर्म क्या है? किन धर्मों को करने से उन्हें इस मायिक संसार से मुक्ति मिलेगी, किन विकर्मों से वे निरन्तर पुरागमन के चक्र में फँसे रहेंगे, बुद्धिपूर्वक कर्म कैसे करें, ज्ञानोदय कैसे हो, ऐसे अनेकानुक प्रश्नों का समाधान गीता के अठारह अध्यायों में अनन्त एवं गूढ अर्थों से भरा है, जिन्हें खोजते खोजते सहस्राब्दियाँ व्यतीत हो गई, सहस्राधिक टीकाएँ लिखी गई, पर उसके सूक्ष्म चिन्तन एवं रहस्यात्मक अर्थ बोध की थाइ पाने में असमर्थ मानव-जाति आज भी अपनी खोज जारी रखे हुए है-कहा भी गया है कि-

''गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पनामस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।''

यह सच भी है क्योंकि गीता कोई सामान्य उपदेश ग्रंथ न होकर पिण्ड-ब्रह्माण्ड-ज्ञान की सच्ची आत्मसंहिता है, जो सम्पूर्ण मानव जाति को रहलोक में पुरूषार्थ करते हुए अनन्तलोक की सुखद् यात्रा का प्रेरक मार्ग प्रशस्त करती है।

गणनामात्र के लिए हम गीता के उपदेशों को ज्ञानयोग, बुद्धियोग, कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग जैसे विभागों में भले ही बाँट ले, परन्तु सबका परमलक्ष्य बिन्दु एक ही है-उस अनन्त परमात्मा में जीवात्मा का विलय और चिर शान्ति।

विषयुवस्तु की दृष्टि से सर्वजन स्वीकार्य तीन प्रमुख योग गीता में सर्वाधिक स्पष्ट रूप से वर्णित है- जो मुक्ति ब्रह्म-सान्निध्य के हेतु हैं-ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग एवं भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग क्या है, क्या यह कर्म मार्ग से पृथक् है अथवा वह उसकी पूर्व सरणी है। इसका विशद् चिन्तन गीता के श्लोकों में मिलता है। कर्ममार्ग अथवा कर्मयोग अपेक्षाकृत सरल एवं श्रेयस्कर क्यों है? यह भी बताया गया है। जीवन एक संग्राम है और अर्जुन की भाँति हमें सुख दुःख, लाभ-हानि के चिंतन से परे रह कर कर्म निरत रहना चाहिए।

कर्म करने की प्रक्रिया में भी पाँच बातों का गहन चिन्तन आवश्यक है-

1. कर्म को ज्ञानपूर्वक किया जाना चाहिए, अन्यमवस्क होकर नहीं।
2. कर्म निस्पह भाव से सम्पन्न किये जाएँ
3. कर्म निस्काम, अर्थात बिना किसी लाग-लपेट के लिय जाए।
4. कर्म में निजि स्वार्थ निहित ने हों, एवं
5. फल की आसक्ति कदापि न हो।

उपर्युक्त तीनों मार्गों में ज्ञानयोग को 'सांख्ययोग' इतर रूप में भी देखा जाता है-यह मार्ग सर्वाधिक दुष्कर है और जन्म-जन्मान्तर की कठोर तपस्या के उपरान्त लाखों-करोड़ों प्राणियों में से किन्ही-किन्ही को इस मार्ग में चल कर सफलता मिल सकती है। एक अन्य मार्ग है भक्ति मार्ग - जिसमें भक्त सर्वात्मना समर्पण भाव से स्वयं को श्रीगोविन्द के चरणों में समर्पित कर जीवन-मुक्त होने की कामना करता है।

बन्धुओ ! जैसा कि हमने आज की इस वार्ता के प्रारम्भ में कहा था हमारा उद्देश्य आज के पावन दिवस पर मादृश सामान्य जनों के लिए गीता के सर्वसुलभ, सहज और सर्वस्वीकृत मार्ग का संकीर्तन करना है, जिस पर चलकर हम अपनी इसलौकिक यात्रा निर्विघ्न रूप से पूर्ण कर उस अनन्त ब्रह्म सागर में विलीन हो सके।

और यह योग अथवा मार्ग है - 'कमयोग' का अनुसरण श्री मद्भगवद्गीता में 'कर्मयोग' की महत्ता और उपादेयता को हम यहाँ एक बार पुनः दोहराए, इससे पूर्व एक सूक्ष्म दृष्टिपात गीता के पूर्व एवं समकालीन उपनिषद् वाक्यों पर भी डालना समीचीन होगा-

यद्यपि अनेक स्थलों पर उपनिषदों में कर्मयोग की श्रेष्ठता का वर्णन हुआ है - पर यहाँ हम केवल दो उदाहरण अपने बोध के लिए प्रमाण स्वरूप लेंगे।

प्रथम है - ईशोपनिषद् का यह मन्त्र-

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीवेसच्छतँ् समाः,
एवं त्वपि नान्यथतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरः।।

जिसमें स्पष्ट सन्देश है कि सब कुछ वह अदृश्य परमात्मा ही कर रहा है इसलिए अब मुझे क्या करना है-यह विचार कर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाएँ, ऐसा नहीं है, वरन् मनुष्य कर्म करे। परन्तु कर्म निष्काम भी हो। इस प्रकार निष्काम कर्म करते हुए मनुष्य सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखें। इससे मनुष्य में कर्मों का लेप नहीं होता। यही मानव मात्र के लिए एकमात्र पथ है, दूसरा कोई नहीं।

कठोपनिषद् में भी इसी कर्मयोग की श्रेष्ठता और इसका समुचित पालन करने का सन्देश 'यम और नचिकेता' संवाद के माध्यम से देते हुए कहा गया है-

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्
अभयं तितीर्ष्ठता पांद नाचिकेत शकेमाहि।

अर्थात्- यदि परब्रह्म तक पहुँचना है, उसको पाना है तो उसके लिए साधना के एकमात्र मार्ग 'त्रिणाचिकेताग्नि' जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्य के रूप में सम्पूर्ण-आयु के मध्य में सन्धि रूप अग्नियाँ हैं, का विधिविहिन के रूप में सम्यक्पालन नितान्त आवश्यक है। सन्देश स्पष्ट है-यदि मालव को सहज एवं निर्विघ्न रूप में अपनी इद्लौकिक यात्रा पूरी कर ब्रह्म-सान्निध्या का लक्ष्य साधना है, तो उसे जीवन के प्रथम तीन आश्रमों में विधिनिहित कर्त्तव्यों को पूरी निष्ठा के साथ और निष्काम भाव से पूरा करना चाहिए ये ही मुक्ति का सर्वश्रैष्ठ मार्ग है। गीता भी इसी कर्मयोग की महन्ता बताती हुई कहती है कि

''नेहामिक्रमनाशोडास्ति प्रत्यवायो न विद्यते
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्''

अर्थात् कर्मयोग का आरम्भ नाशवान नही है, वरन् कर्मयोग का तनिक सा भी साधन मृत्यु रूप महान् भय से रक्षा कर लेता है। इस प्रकार तत्वतः गीता में सर्वसाधारण मनुष्य से लेकर श्रेष्ठ चिन्तक जनो के लिए कर्ममार्ग सहज, सुलभ और सुफलदायक बताया गया है, जिसमें मनुष्य सभी ऊहापोहों से बचकर अपने विधिसम्मत कर्मो को निष्काम भाव से पूरा कर जीवन मुक्त हो सकता है।

यहाँ 'कर्मयोग' का चिन्तन करते समय तीन शब्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए है - कर्म, अकर्म और विकर्म। अर्जुन ने जब भगवान् से प्रश्न किया कि कर्म का सही स्वरूप क्या है, तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया-

'किं कर्म किमकर्मेति कनयोऽप्यत्र मोहिताः
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।

हे अर्जुन कर्म क्या है? और कर्म क्या है? इस प्रकार का निर्णय करने में बुद्धिमान पुरूष भी मोहित हो जाते है इसलिए मैं तुझे कर्मतत्व का सही स्वरूप भलीभाँति समझाता हूँ, जिसे जानकर तू अशुभ अर्थात् कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाएगा। कर्मो की गति गहन है गहनो कर्मक गतिः। यहाँ वह द्रष्टव्य है कि अनेक चिन्तक कर्म, अकर्म और निकर्म को सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनो रूपों में लेते है। वस्तुतः सकारात्मक अथवा नकारात्मक सोच का सम्बन्ध हमारी बुद्धि से है - हम एक आधे भरे पानी के गिलास को दोनो ही रूपों में देख व प्रकट कर सकते है। सकारात्मक दुष्टिकोण कहता है गिलास आधा भरा है और पूर्ण होने की सभी संभावानाए उपस्थित है। नकारात्मक सोच वाले व्यक्ति की दृष्टि में गिलास आधा खाली है और कभी भी खाली हो सकता है।

जो लोग जीवन के उज्जवल पक्ष को मन में रखते है उनकी दृष्टि से अकर्म का अर्थ है कर्म से विशक्ति-पूरी रख ज्ञानयोग अथवा संभव्ययोग की साधना, कर्म का अर्थ है निष्काम भाव से कर्त्तव्य पालन और विकर्म का अर्थ है विशेष कर्म अर्थात् भक्तिमय समर्पण भाव से ईश्वर साधना। इस प्रकार अकर्म, कर्म और विकर्म तीनों ही साधक है और क्रमशः ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग की और ले जाने वाले है। इसके विपरीत जीवन के निसेधात्मक एवं निराशाजनक पक्ष को देखने वाले लोग अकर्म का आशय निष्क्रियता, अकर्मव्वता और विकर्म का अर्थ निकृष्ट, द्वीन और पापकर्मो के रूप में लेते है।

किन्तु भगवान् श्री कृष्ण ने स्पष्टतः इन तीनों में विभेद को नकारते हुए कहा है कि जो मनुष्य कर्म में अकर्म देखता है ओर अकर्म में कर्म देखता है, वही बुद्धिमान है और कई योगो की भाँति अपने समस्त कर्म करता है-

'कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्माण च कर्म यः।
स बुद्धिमानसुप्तेषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्।।'

गीता में समग्र-मानव-जाति, कर्म, वर्ग, आयु के लोगो के लिए विधिसम्मत कार्यो का विस्तृत उल्लेख किया गया है। कर्म दो प्रकार के है- काम्य कर्म और नियत कर्म। स्त्री, धन, पुत्र, वस्तुओं की प्राप्ति एवं संग्रह हेतु यज्ञ, तप, दान काम्यकर्म है - जिनका समयानुसार मनुष्य को त्याग करना चाहिए - किन्तु ईश्वरभक्ति, देवपूजन, सेवा हेतु किये गये

यज्ञ-तप और दान कामनाओं के त्याग पूर्वक करणीय है। ये त्यागने योग्य नही है और इनके करने से जीवन पवित्र बनता है। गीता कहती है कि सभी देहाधिकारियो के लिए सपूर्वत से कर्मत्याग सम्भव नही है उन्हे अपने अपने स्वाभाविक कर्मो को विधिपूर्वक करते रहने पर ही परमतत्व की प्राप्ति हो सकती है।

गीता का सन्देश बहुत ही स्पष्ट और सारगर्मित है जिसे अल्पतय तीन सूत्रों में समझा और आत्मसन्न किया जा सकता है-

प्रथम अपना विधिविहित अर्थात् प्रत्येक आश्रम हेतु शास्त्रोक्त कर्म निष्ठापूर्वक पूरा कीजिए, उसमें तनिक सी भी कोताही - लापरवाही न बरतीये

द्वितीय-कर्म को कर्म की भावना से सम्पन्न कीजिए, उसका क्या परिणाम होगा, क्या फल मिलेगा, इसकी चिन्ता छोड़ दीजिए, क्योंकि आपका उस पर न तो अधिकार है और न ही नियन्त्रण - 'कर्मण्यनाधिकारस्ते' का उपदेश इसी के निमिन्त दिया गया है।

तीसरे यथा सम्भव प्रभास कीजिए कि आपकी कृत-कर्मो में आसक्ति, वासना, लगाव, स्वार्थ रहिता हो - तब ही कर्म करने के पश्चात् शान्ति का सुखद अनुभव होगा और आप स्वयं समस्त कर्मो के सम्यक सम्पादन के पश्चात् भी निर्लिप्तना का आनन्द प्राप्त होगा-

'त्यवत्वा कर्मफलासङ नित्यतृप्तो निराश्रयः
कर्मण्यमिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः।।

बन्धुओं।

क्या ज्ञान, क्या भक्ति, क्या बुद्धि और क्या कर्म मार्ग, गीता-विज्ञान का चिन्तन अदभुत एवं असीम है। मानव की इतनी बुद्धि-क्षमता नही कि उसमें प्रकाशमान एक नक्षत्र की भी सही पहचान कर सके, सर्वात्मन समझे। हम साधारण जनों के लिए यही श्रेयस्कर है कि हम निरन्तर गीता-ज्ञान-सागर में अवगहन करते रहें और सार रूप में एक ही वाक्य सदैव स्मरण रख यथासम्भवत पालन करे-

'कर्म ही ईश्वर पूजा है, जिसे अंग्रेजी में भी कहा गया है

WORK IS WORSHIP

इरति तत् सत्।